जैन राम-कथाओं में धर्म

डॉ० सुरेन्द्रकुमार शर्मा

राम-कथा-मन्दाकिनी में अवगाहन करके अनेक कवियों को पुण्यार्जित करने का शुभावसर प्राप्त हुआ है। बौद्ध एवं जैन मतानुयायी भी राम-कथा के प्रबल पुण्यमय प्रवाह के सम्मुख तटस्थ न रह सके और उन्होंने नतमस्तक होकर इसके कथा-सीकरों से अपने काव्यों को अभिसिंचित किया। जैन साहित्य की राम-कथा सम्बन्धी कृतियों में अनेक उपाख्यान मिलते हैं। इनमें प्राकृत कवि विमलसूरि का पउमचरिउ, संस्कृत जैन-कवि रविषेण का पद्मपुराण, गुणभद्र का उत्तरपुराण, हेमचन्द्र का त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित आदि प्रमुख रचनाएं हैं। इन काव्यों के राम-कथा सम्बन्धी उपाख्यानों में से हिन्दू राम-कथा के उन अंशों को निकाल दिया गया है या परिवर्तित कर दिया गया है जो जैन धर्म के सिद्धान्तों से मेल नहीं खाते।

जैन राम-कथा साहित्य कथाओं का अतुल भंडार है। जैन कथाकारों ने प्रायः धार्मिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए कथाओं का सुगम मार्ग ग्रहण किया। चाहे महाकाव्य हों या खण्डकाव्य, पुराण हों या चरितकाव्य, सर्वत्र पुष्प में परागकणों के समान इनकी छटा बिखरी हुई दृष्टिगत होती है। प्रायः दिगम्बर सम्प्रदाय के पुराण और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के चरित-ग्रन्थ दोनों प्रकार की रचनाओं में कथा-बाहुल्य है। जैन आचार्यों एवं कवियों ने धार्मिक परम्पराओं, विचारों और सिद्धान्तों के प्रचार व प्रसार के लिए तथा अपनी बात को जनता के हृदय तक पहुंचाने के लिए कथाओं का आश्रय लिया। इन कथाओं में सरसता, रोचकता, मनोरंजन, जिज्ञासा, विस्मय, कौतूहल आदि का सहज समावेश है।

यद्यपि जैन साहित्य के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न युगों में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में कथाओं का निर्माण हुआ, परन्तु भाषा-वैविध्य और काल-भिन्नता के होने पर भी जैन कथा-साहित्य की प्रवृत्तियों अथवा धार्मिक विचारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। विचारों एवं प्रवृत्तियों में एकरूपता होने के कारण समग्र साहित्य सुव्यवस्थित, परम्पराबद्ध एवं सशक्त रूप में दृष्टिगत होता है।

जैन कथा-साहित्य का प्राण एकमात्र धर्म है। जैन कवि धर्म-प्रवण समाज की रचना करना चाहते थे। अतः चाहे तो पुराण हों, चाहे चरित-काव्य या कथात्मक कृतियां हों, चाहे प्रेम कथा हों चाहे साहसिक कथा हो और चाहे सदाचार सम्बन्धी कथा हों, सर्वत्र धर्म तत्त्व अनुस्यूत मिलता है। धर्म की प्रधानता होते हुए भी पात्रों के चरित्र को अतिमानवीय रूप नहीं दिया गया है क्योंकि इन कवियों का जीवन और जगत् के प्रति स्वस्थ एवं संतुलित दृष्टिकोण रहा है। अतः जहां कथा साहित्य में परलोक के प्रति आकर्षण है वहां इहलोक के प्रति भी अनासक्ति नहीं है।

जैन कृतियों में कर्म सिद्धान्त या पुनर्जन्मवाद के प्रति अटूट आस्था प्रकट की गई है। ईश्वर या अदृष्ट शक्ति के स्थान पर पूर्वजन्म के कर्मों को महत्त्व दिया गया है। शुभ या अशुभ कर्मों के अनुरूप ही प्राणी नवीन शरीर का अधिकारी बनता है। जहां कहीं पात्रों के असाधारण कार्यों में अतिमानवीय (यक्ष, विद्याधर आदि की सहायता) शक्ति की चर्चा की जाती है वहां भी वह शक्ति केवल निमित्त मात्र होती है, मुख्य कारण तो मनुष्य के संचित कर्म ही होते हैं। पुनर्जन्म की अवश्यम्भाविता और कर्मविपाक के सिद्धान्त की सुदृढ़ आधारशिला तैयार करने के लिए इन कथाकारों द्वारा इतिहास की भी उपेक्षा कर दी गई है। एक ही पात्र के उतार-चढ़ाव को प्रकट करने के लिए जन्म-जन्मान्तरों की कथाओं का जाल-सा बिछा रहता है। कर्म-बन्धन एवं जन्म-मरण के आवागमन से मुक्ति तब तक नहीं मिल सकती, जब तक सद्गति प्राप्त न हो जाए।

इन कथा-काव्यों के नायक वीरता, शृंगार और वैराग्य इन तीन सोपानों को पार करते हुए अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचते हैं। यह इनके लिए अनिवार्य नियम-सा है। भोगासक्ति के गुरुत्वाकर्षण से हटकर विरक्ति की सीमा तक पहुंचने पर फिर लौट पाना असम्भव है। भोग और योग के मध्य तालमेल करने का प्रयास नहीं किया गया है। कहीं-कहीं नायक की विसंगतियों, अंतर्द्वन्द्वों अथवा कठिन परिस्थितियों को उभारने के लिए प्रतिनायक या प्रतिनायिका की कल्पना की जाती है। जैन कवियों ने मनुष्य-जीवन के नैतिक स्तर को समुन्नत करने के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विविध प्रकार की उपदेशात्मक कथाओं की संयोजना की है। इनका उद्देश्य विद्वत्समाज को ही प्रभावित करना नहीं था, अपितु उस साधारण समाज को भी जीवन प्रदान करना था जो विवेक और चरित्र से सर्वथा अपरिचित था। जैन कथाकारों का एकमात्र उद्देश्य सद्भाव, सद्धर्म और सन्मार्ग-प्रेरक सत्कर्म का जनसमुदाय में प्रचार करके नैतिक और सदाचार-युक्त जीवन-स्तर को ऊंचा करना था। इस उच्चता द्वारा व्यक्ति लौकिक और पारलौकिक सुख का भोक्ता बन सकता है। इन कथाकारों ने व्यक्ति के जीवन विकास के लिए सद्धर्म और सन्मार्ग के जिन प्रकारों का उल्लेख किया है वे सर्वसाधारण के लिए हैं। कोई व्यक्ति किसी धर्म को मानने वाला, किसी विचारधारा का, किसी देश या जाति का हो, आस्तिक हो या नास्तिक, धनी हो या दरिद्र, सबके लिए यह मार्ग लाभप्रद और कल्याणकारी सिद्ध होता है। मानव के नैतिक स्तर को ऊंचा उठाने की दृष्टि से इन कथा-ग्रन्थों का अधिक महत्त्व है।

जैन कृतियों की कथावस्तु लोक-कथाओं पर आधारित है परन्तु जैन कवियों ने औत्सुक्यपूर्ण, कौतूहलयुक्त, काल्पनिक और धार्मिक कथाओं को सर्वथा नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। इनके पात्र दैविक शक्ति से सम्पन्न न होकर साधारण समाज से गृहीत होते हैं, जो सुख-दुःख से अनुप्राणित तथा आशा-निराशा, धैर्य-अधैर्य, हर्ष-विषाद और भय एवं साहस के हिंडोलों में झूलते हुए दिखाई देते हैं। जहां उनके जीवन में अन्धकार है वहीं प्रकाश की किरणें भी मुस्कराती हुई परिलक्षित होती हैं और अनुराग से रंजित प्रकृति सहानुभूति प्रकट करती हुई जान पड़ती है। जैन कथा के धर्मानुप्राणित नायक जहां एक ओर अदम्य साहस, दृढ़ वीरता, अद्भुत धैर्य और प्रबल पराक्रम का परिचय देते हैं वहीं दूसरी ओर उनके चरित्र में दया, करुणा, परोपकार, सहज स्नेह इत्यादि मानवीय गुणों की झांकी भी देखने को मिलती है। अतः जैन कथाकारों ने धर्म और सदाचार की भित्ति पर मानव-प्रासाद के निर्माण में सक्रिय सहयोग दिया है।

अतः चाहे भले ही जैन राम-कथा में भौतिक विचारधारा को समुचित स्थान न मिल पाया हो परन्तु धर्म एवं नैतिक विचारधारा के प्रचार-प्रसार में जो इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, वह निस्संदेह सराहनीय है।

स्वयंभू-रामायण के कथा प्रसंग से एक बहुत ही मनोरंजक तथ्य पर प्रकाश पड़ता है और वह है सुन्दरकाण्ड नाम पड़ने के कारण पर। बाल, युद्ध और उत्तर तथा अयोध्या, अरण्य और किष्किन्धाकाण्डों के नामकरण का कारण तो समझ में आ जाता है, क्योंकि वह काफ़ी स्पष्ट है। परन्तु 'सुन्दरकाण्ड' के नामकरण का कारण बहुत कुछ रहस्य ही है। लोगों की सामान्यतः यही धारणा है कि यह काण्ड दूसरों की अपेक्षा अधिक सुन्दर है, इसलिए इसका नाम सुन्दरकाण्ड पड़ा। परन्तु यह व्याख्या किसी प्रकार सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती, क्योंकि अन्य काण्डों के साथ इस व्याख्या वाले नाम का मेल नहीं बैठता।

सही व्याख्या की कुंजी स्वयंभू-रामायण के 'विद्याधर' काण्ड में मिलती है—

'संदरु' जगे सुंदरु भणेवि, 'सिरिसयलु' सिलायलु चुण्णुणिउ।
हणुरुह-दीवे पवड्डियउ, 'हणुवन्तु' णामु तें तासु किउ॥'—१।१६।११

हनुमत के अनेक नामों में से एक नाम 'सुन्दर' भी था। इसलिए जिस काण्ड में सुंदर के शौर्य का वर्णन हो, उसका 'सुंदरकाण्ड' नाम न होगा, तो क्या होगा? रामकथा के पाठक जानते हैं कि 'सुंदरकाण्ड' में आदि से लेकर अंत तक हनुमान के ही पराक्रम का वर्णन है। हनुमान का लंका-प्रवेश, सीता का पता लगाना, सीता को आश्वासन देना, लंका को उजाड़ना, रावण को दहलाना, विभीषण से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करना आदि सभी कार्यों के नायक हनुमान हैं और रामकथा में इन कार्यों का कितना महत्त्व है इसे बतलाने की जरूरत नहीं है। ऐसे पराक्रमपूर्ण कार्यों के नायक सुंदर के नाम पर एक संपूर्ण काण्ड का नामकरण उचित ही कहा जायेगा।

—डॉ० नामवरसिंह के निबन्ध 'अपभ्रंश का राम-साहित्य' से साभार
(राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० सं० ६६३-६४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृत कथाकारों का अहिंसात्मक दृष्टिकोण

डॉ० प्रेमसुमन जैन

प्राकृत, संस्कृत एवं अपभ्रंश भाषाओं की प्राचीन कथाओं में अहिंसा के स्वरूप, महत्त्व एवं अहिंसा-पालन के परिणामों को प्रतिपादित किया गया है। तीर्थंकरों के जीवन-चरित एवं महापुरुषों की कथाओं में अहिंसा के कई प्रसंग उपलब्ध होते हैं। वस्तुतः सिद्धान्त-ग्रन्थों में प्राप्त अहिंसा के स्वरूप का व्यावहारिक रूप जैन कथा-साहित्य में देखा जा सकता है। यह कथा-साहित्य विशाल है। अतः प्राकृत की कुछ प्रतिनिधि कथाओं के आधार पर ही अहिंसा के स्वरूप को समझने का यहां प्रयत्न किया जा सकता है।

तीर्थंकरों द्वारा अहिंसा की प्रतिष्ठा

प्राकृत कथा साहित्य में तीर्थंकरों के जीवन की कई घटनाएं वर्णित हैं। अहिंसा से सम्बन्धित कुछ प्रसंग यहां विचारणीय हैं। भगवान् ऋषभदेव के समय में मानव की आवश्यकताएं कम थीं। अतः हिंसा का वातावरण भी कम था। लेकिन जैसे-जैसे मानव सामाजिक प्राणी होने लगा तो उसे सहिष्णुता, अनुकम्पा आदि अहिंसक गुणों की अधिक आवश्यकता पड़ी। कल्पवृक्षों की कमी अर्थात् वनसम्पदा का जीवन के लिए अपर्याप्त होना कहीं प्राणियों के परस्पर वध को बढ़ावा न दे, मांसाहार की प्रमुखता न हो जाय, इस दृष्टि से ऋषभदेव ने सामाजिकता की ओर बढ़ते हुए उस समय के मानव को कृषि एवं जीविका के अन्य साधनों की शिक्षा प्रदान की थी।[1] मनुष्य जंगली, क्रूर एवं असुन्दर ही न बना रहे, इसलिए उन्होंने विभिन्न कलाओं और शिल्पों की ओर मानव को प्रेरित किया था। अतः मनुष्य की आध्यात्मिकता की समझ को जाग्रत करने के लिए भगवान् ऋषभदेव के ये अहिंसक प्रयत्न थे।

तीर्थंकर नेमिनाथ की प्राणियों के प्रति अनुकम्पा इतिहास-प्रसिद्ध है। उनके जीवन की कथा तो मात्र इतना कहती है कि पशुओं के बाड़े को देखकर उनके अकारण वध की सूचना से उन्होंने तपस्वी जीवन धारण कर लिया। किन्तु नेमिनाथ के जीवन में इतना बड़ा परिवर्तन अचानक और अकारण नहीं हुआ है। इस घटना के द्वारा कृष्ण उन्हें कुछ सिखाना चाहते थे। किन्तु नेमिनाथ अपने अहिंसक चित्त द्वारा सारे जगत् को ही इस घटना द्वारा बहुत-कुछ सिखा गये। जन-जन के अन्तर्मानस में प्राणियों की पीड़ा की अनुभूति इतनी तीव्रता के साथ शायद पहली बार ही अनुभव की गई होगी। मांसाहार के विरोध में नेमिनाथ का यह एक अहिंसक प्रयोग था।[2] और सम्भवतः उसका ही यह प्रभाव था कि नेमिनाथ के समय में साधुओं का जब चातुर्मास होता था तो राजा कृष्ण ने चातुर्मासों में राज्य सभा के आयोजन करने बन्द कर दिये थे ताकि आवागमन, भीड़-भाड़ आदि के कारण प्राणियों की अधिकतम हिंसा से बचा जा सके।[3]

पार्श्वनाथ का जीवन अहिंसा का जीता-जागता उदाहरण है। उन्होंने अपने पूर्वजन्म और तपस्वी जीवन में क्षमा की साकार मूर्ति को उपस्थित किया है। वध, क्रोध, वैर, बदला आदि अनेक हिंसा के कार्यों का सामना उन्होंने अहिंसात्मक साधनों से किया है। तपस्वी द्वारा यज्ञ में होम किये जा रहे नाग की रक्षा उन्होंने अपने कुमार जीवन में ही की थी।[4] यह एक ऐसा प्रतीक है जो अहिंसा के सूक्ष्म भावों को व्यक्त करता है। यदि नेमिनाथ ने जंगल के तृण खाने वाले मूक प्राणियों को हिंसा से बचाया था तो पार्श्वनाथ ने एक कदम आगे बढ़कर विषैले नाग की रक्षा भी अहिंसक दृष्टि से आवश्यक मानी, क्योंकि प्राणी का स्वभाव कैसा भी हो, अकारण उसका वध करने का अधिकार किसी बड़े से बड़े और धार्मिक व्यक्ति को भी नहीं है।

१. अहिंसा का तत्त्वदर्शन : मुनि नथमल; ऋषभदेव—एक परिशीलन : देवेन्द्र मुनि।
२. उत्तराध्ययन सूत्र, अ० २२, गाथा १४-२०
३. कर्मयोगी कृष्ण—एक अनुशीलन : देवेन्द्र मुनि।
४. सिरिपासनाहचरियं, १४-३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् महावीर का जीवन-चरित अहिंसा के स्वरूप को और अधिक गहरा बनाता है। उन्होंने सर्प या संगम देवता द्वारा निर्मित विषधर नाग पर सहजता से और निर्भयता पूर्वक विजय प्राप्त कर यह स्पष्ट कर दिया था कि शक्तिशाली व्यक्ति और प्राणी की भी हिंसात्मक आकृति टिकाऊ नहीं है, बनावटी है। अहिंसक चित्त निरन्तर विजयी रह सकता है।[1] महावीर अहिंसा के विस्तार के लिए उसके मूलभूत कारणों तक पहुंचे हैं। उनके जीवन की हर घटना दूसरे के अस्तित्व की रक्षा करते हुए एवं मन को न दुखाते हुए घटित होती है। सम्भवतः परिग्रह (अनावश्यक संग्रह) दूसरों को पीड़ा पहुंचाने में सबसे बड़ा कारण है। यही कारण है कि महावीर ने पांचवें व्रत अपरिग्रह को एक नई दिशा प्रदान की है।[2] अनेकान्तवाद द्वारा उन्होंने मानसिक हिंसा को भी तिरोहित करने का प्रयत्न किया है और वीतरागता द्वारा वे आत्मिक अहिंसा के प्रतिष्ठापक बने हैं।

हिंसा के विभिन्न रूप

प्राकृत-कथा-साहित्य में युद्ध, प्राणी-वध एवं मनुष्य-हत्या आदि के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। इनको पढ़ते समय यह प्रश्न उठता है कि अहिंसक समाज द्वारा निर्मित इस साहित्य में हिंसा का इतना सूक्ष्म वर्णन क्यों और किसलिए है? प्राकृत के प्राचीन आगम-ग्रन्थों—सूत्रकृतांग आदि में मांस-विक्रय के विभिन्न उल्लेख हैं।[3] विपाकसूत्र में अण्डे के व्यापार, मछली के व्यापार आदि की विस्तृत जानकारी दी गई है।[4]

आवश्यक चूर्णि, बृहतकल्पभाष्य, राजप्रश्नीय सूत्र आदि ग्रन्थों से पता चलता है कि ईर्ष्या, क्रोध, अपमान आदि के कारण माता पुत्र की, पत्नी पति की, बहू सास की, मन्त्री राजा की हत्या करने में संकोच नहीं करते थे।[5] प्राकृत कथाओं में वर्णित प्राणि-वध, मनुष्य-हत्या, शिकार, युद्ध आदि के ये प्रसंग इस बात की सूचना देते हैं कि तीर्थंकरों ने जिस अहिंसा धर्म का प्रतिपादन किया है, उसे यदि यथार्थ रूप में नहीं समझा गया तो ये उपर्युक्त परिणाम ही होने हैं। हिंसा और अहिंसा में अधिक दूरी नहीं है। सिक्के के दो पहलुओं के समान इनका अस्तित्व है। केवल व्यक्ति की भावना ही हिंसा और अहिंसा के बीच सीमा-रेखा खींचने में सक्षम है। अतः प्राकृत कथा-साहित्य में वर्णित हिंसात्मक वर्णनों की बहुलता इस बात की द्योतक है कि महावीर के बाद अहिंसक समाज सर्वव्यापी नहीं हुआ था। किन्तु उस अन्धकार में उसके हाथ में अहिंसा का दीपक अवश्य था जिसकी कुछ किरणें जैन साहित्य में यत्र-तत्र उपलब्ध होती हैं।

अहिंसा के प्रकाश-स्तम्भ

जैन कथा-साहित्य में सम्भवतः भरत-बाहुबली की कथा सर्वाधिक प्रभावकारी अहिंसक कथा है। भरत और बाहुबली के जीवन-चरित से यह पहली बार पता चलता है कि युद्ध की भूमि में भी कोई अहिंसक संधि-प्रस्ताव हो सकता है। दोनों की सेनाओं में हजारों प्राणियों के वध के प्रति उत्पन्न करुणा इस कथा में साकार हो उठी है। दो राजाओं के व्यक्तिगत निपटारे के लिए लाखों व्यक्तियों के मरण के आंकड़ों से नहीं, अपितु व्यक्तिगत भावनाओं और शक्ति-परीक्षण से भी उनकी हार-जीत स्पष्ट की जा सकती है। दृष्टि-युद्ध, मल्लयुद्ध और जलयुद्ध का प्रस्ताव इस कथा में अहिंसा का प्रतीकात्मक घोषणा-पत्र है।[6]

नायाधम्भकहा की दो कथाएं अहिंसा के सम्बन्ध में बहुत प्यारी कथाएं हैं। मेघकुमार के पूर्वभव के जीवन के वर्णन-प्रसंग में मेरुप्रभ हाथी की कथा वर्णित है। यह हाथी आग से घिरे हुए जंगल में एकत्र छोटे-बड़े प्राणियों के बीच में खड़ा है। हर प्राणी सुरक्षित स्थान खोज रहा है। इस मेरुप्रभ हाथी ने जैसे ही खुजली के लिए अपना एक पैर उठाया कि उसके नीचे एक खरगोश का बच्चा छाया देखकर आकर बैठ गया। हाथी खुजली मिटाकर अपना पैर नीचे रखता है, किन्तु जब उसे पता चला कि एक छोटा प्राणी उसके पैर के संरक्षण में आ गया है तो उसकी रक्षा के लिए मेरुप्रभ हाथी अपना वह पैर उठाये ही रखता है और अंततः तीन दिन-रात वैसे ही खड़ा रहकर वह स्वयं मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, किन्तु वह उस छोटे-से प्राणी खरगोश तक धूप और आग की गर्मी नहीं पहुंचने देता।[7] अहिंसा का इससे बड़ा उदाहरण और क्या होगा!

इसी प्रकार ज्ञाताधर्म कथा में धर्मरुचि साधु की प्राणियों के प्रति अनुकम्पा का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह कथा हिंसा और अहिंसा

---

१. महावीरचरियं : नेमिचन्द्र सूरि ८,२२.

२. भगवान् महावीर : एक अनुशीलन : देवेन्द्रमुनि।

३. सूत्रकृतांगसूत्र, २,६,६,२.

४. विपाकसूत्र ३, पृ० २२, ८ पृ० ४६.

५. जैन आगम-साहित्य में भारतीय समाज : डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, पृ० ५६-८४.

६. आदिपुराण : जिनसेन, ऋषभदेव-कथा।

७. तं ससयं अणुपविट्ठं पासति, पासित्ता पाणाणुकंपयाए···से पाए अंतरा चेव संधारिए नो चेव णं निक्खिते—णायाधम्मकहा, प्र० अ० १८३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के दोनों पक्षों को उजागर करती है। नागश्री जैसी स्वार्थी गृहस्थिन ने विषाक्त भोजन को केवल इसलिए साधु के पात्र में डाल दिया कि उसकी निंदा न हो कि उसके द्वारा बनाया गया भोजन (शाक) कड़वा है अथवा विषाक्त है। किन्तु दूसरी ओर धर्मरुचि को जब यह पता लगा कि उसे भिक्षा में प्राप्त शाक कड़वा और विषाक्त है तो गुरु-आज्ञा से वह उसे निर्जन स्थान पर फेंकने को उद्यत हुआ। किन्तु यहीं उसकी अनुकम्पा सामने आ गई और उस साधु ने देखा कि इस एक बूंद शाक के लिए हजारों चीटियां यहां एकत्र हो गई हैं। यदि पूरा शाक यहां डाल दिया गया तो हजारों-लाखों प्राणियों का अनायास वध हो जायगा। अतः वह करुणामय साधु उस शाक को स्वयं पी गया।[1] करोड़ों प्राणियों के प्राण-वध से एक का प्राणान्त होना उसे अधिक श्रेयस्कर लगा। यह इस बात का ज्वलंत उदाहरण है कि जीवन की दृष्टि से सभी प्राणियों का मूल्य बराबर है। इसीलिए प्राकृत कथाओं का यह प्रमुख स्वर है कि अहिंसा का यथासम्भव अधिक से अधिक पालन किया जाये। हिंसा के वातावरण को शान्त किया जाये।

अहिंसक समाज-निर्माण के प्रयोग

प्राकृत कथाओं में अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए कई प्रयोग किये गये हैं। मानव के जीवन में अहिंसा के महत्त्व की इतनी भावना थी कि व्यक्ति यह प्रयत्न करता था कि यथा-सम्भव हिंसा का निषेध किया जाए। सूत्रकृतांग सूत्र में आर्द्रकुमार साधु की कथा वर्णित है। उन्होंने हिंसा के मूलकारण मांस-भक्षण का युक्तिपूर्वक निषेध किया है।[2] आवश्यकचूर्णि में अरहमित्त श्रावक के पुत्र जिनदत्त की कथा है। वह एक बार भयंकर रोग से पीड़ित हो जाता है। वैद्य उसे औषधि के साथ मांस-भक्षण आवश्यक बताते हैं। किन्तु वह अपने स्वास्थ्य के लिए अन्य प्राणियों के वध से प्राप्त होने वाले मांस का भक्षण करना स्वीकार नहीं करता है।[3] वसुदेवहिण्डी की एक कथा में चारुदत्त अपनी यात्रा के लिए बकरे को मारकर उसकी खाल लेना पसन्द नहीं करता,[4] जबकि उसका मित्र उस दुर्गम प्रदेश में उसे आवश्यक बताता है।[5]

आगम भाष्य साहित्य में कालक कसाई के पुत्र सुलस की कथा प्रसिद्ध है। उसका पिता प्रतिदिन पांच सौ भैंसे मारता था। अतः पिता के मर जाने पर सुलस को भी जब कुल की परम्परा का निर्वाह करने के लिए कहा गया कि वह परिवार के मुखिया का दायित्व किसी पशु पर तलवार का एक वार करके स्वीकार करे तो सुलस ने इस अकारण हिंसा का विरोध किया एवं कहा कि इस हिंसा के पाप का भागी केवल मुझे होना पड़ेगा। तब परिवार वालों ने कहा कि तुम पशु को काटो। उसमें हम सब हिस्सेदार होंगे। सुलस ने उन्हें शिक्षा देने के लिए तलवार उठाकर उसका वार अपने पैर पर ही कर लिया। यह देखकर सब आश्चर्य-चकित हो गये। तब सुलस ने कहा अब आप सब मेरे पैर की इस पीड़ा को थोड़ी-थोड़ी बांट लें ताकि मुझे कष्ट न हो। परिवार वाले निरुत्तर हो गये क्योंकि किसी की पीड़ा को कौन बांट सकता है। सुलस ने उन्हें समझाया कि इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी को मारने पर उसे पीड़ा होती है। अतः हिंसा कभी सुखदायी नहीं हो सकती।[6]

बलि में होने वाले पशुवध को रोकने के लिए भी जैन कथा-साहित्य में अनेक प्रसंग आये हैं। अजमेर के पास हर्षपुर नामक स्थान पर बकरे की बलि को रोकने के लिए राजा पुष्यमित्र के समय में आचार्य प्रियग्रन्थ ने श्रावकों की प्रेरणा से बकरे पर मन्त्र का प्रयोग कर उसे बलि से बचाया तथा उसकी वाणी में अहिंसा के महत्त्व को प्रतिपादित कराया है।[7] पशुओं को अभयदान देने की यह बड़ी मार्मिक कथा है। इसी तरह भाष्य-साहित्य में वर्णित मातंग यमपाश की कथा जीववध-निषेध की प्रसिद्ध कथा है। चांडाल कुल में जन्म लेने पर यमपाश पर्व के दिनों में जीववध नहीं करता।[8] उसकी यह प्रतिज्ञा कई प्राणियों को जीवन प्रदान करती है और अन्ततः राजा को भी जीव-वध की निषेध-आज्ञा प्रसारित करनी पड़ती है।

प्राणि-वध की निषेधाज्ञा

प्राकृत कथाओं में अहिंसा के प्रचार-प्रसार के लिए राजा द्वारा अपने राज्य में अमारि-पडह बजवाये जाने के भी उल्लेख मिलते

---

१. णायाधम्मकहा, अहिंसाठ्ठंतित्तालाउयं-भक्खणपद, अ० १६
२. सूत्रकृतांग, २, ६, २७-४२
३. आवश्यकचूर्णि, २, पृ० २०, २
४. वसुदेवहिण्डी एवं वर्धमानदेशना में वर्णित कथा।
५. प्राकृत का जैन कथा-साहित्य : डा० जगदीशचन्द्र जैन।
६. जैन कहानियां : मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम', भाग २,कथा ६
७. कल्पसुखबोधिका, टीका २, अधि० ८; जैनकथामाला भाग १५ : मुनि मधुकर
८. जैन कहानियां, भाग २१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। अमारि-घोषणा हो जाने पर कोई भी व्यक्ति किसी प्राणी का वध नहीं कर सकता था। उन दिनों मांस आदि की दुकानें भी बन्द कर दी जाती थीं। उपासकदशांग में वर्णित महाशतक श्रावक की कथा से ज्ञात होता है कि राजगिरि नगर में अमारि-घोषणा हो जाने से रेवती को मांस मिलना बन्द हो गया था।[1] एक कथा से ज्ञात होता है कि राजा सौदास ने अष्टाह्निका पर्व पर आठ दिन तक अमारि की घोषणा करायी थी।[2] राजस्थान में मध्ययुग तक राज्य द्वारा ऐसी अमारि-घोषणा किये जाने के उल्लेख मिलते हैं।[3] उपदेशमाला में कहा गया है कि सारे संसार में अमारि-घोषणा किये जाने का फल उस व्यक्ति को प्राप्त होता है जो किसी एक दुखी प्राणी को भी जिनवचन में प्रतिबोधित कर देता है।[3अ]

हिंसा के दुष्परिणाम

जैन कथा-साहित्य ने प्राणि-वध को रोकने एवं दूसरे को न सताने की भावना को दृढ़ करने के लिए एक कार्य यह भी किया है कि हिंसक कार्यों में लिप्त व्यक्तियों को जन्म-जन्मान्तरों में मिलने वाले फल की सही तस्वीर खींची है। विपाकसूत्र की कथाएं बताती हैं कि अंडे के व्यापारी निम्नक, प्राणि-वध करने वाले छणिक कसाई एवं सूरदत्त मच्छीमार को अपने हिंसक कार्यों के द्वारा कितनी यातनाएं सहनी पड़ती हैं।[4] बृहत्कल्पभाष्य आदि ग्रन्थों में हत्या करने वाले के लिए अनेक प्रकार की सजाएं दिये जाने का उल्लेख है। कर्मपरिणाम एवं सजा की कठोरता ने भी हिंसक भावना को क्रमशः कम करने में मदद की है। एक हिंसा दूसरी हिंसा को जन्म देती है। अतः वैर की लम्बी परम्परा विकसित हो जाती है। इस बात को कई प्राकृत कथाओं ने सोदाहरण स्पष्ट किया है।[5]

अभय से हृदय-परिवर्तन

प्राकृत की कुछ कथाएं अहिंसा के अभय तत्त्व को उजागर करती हैं। कितना ही भयंकर एवं क्रोधी हत्यारा क्यों न हो, उसकी यह स्थिति अधिक समय तक नहीं टिक सकती। उसके हृदय में भी किसी घटना विशेष द्वारा परिवर्तन लाया जा सकता है। मोग्गरपाणि अर्जुन की कथा बहुत प्रसिद्ध है। वह अपनी पत्नी के अपमान का बदला लेने के लिए प्रतिदिन पाँच पुरुष तथा एक स्त्री की हत्या करता था। उसके इस उत्पात के कारण लोगों का जीना मुश्किल हो गया था। किन्तु अहिंसा और अभय के पुजारी सुदर्शन साधक ने इस अर्जुन के हृदय को भी परिवर्तित कर उसे साधक बना दिया। अर्जुन क्षमा की मूर्ति बन गया।[6] इसी तरह दृढ़प्रहारी की कथा भी बड़ी मार्मिक है। उसने क्रोध के कारण पति, पत्नी तथा उनकी गाय को तलवार के एक ही वार से समाप्त कर दिया। किन्तु गर्भवती गाय के तड़पते हुए बछड़े को देखकर दृढ़प्रहारी कांप उठा और हिंसा के चरम उत्कर्ष ने उसे अहिंसक बना दिया। वह प्रायश्चित्त के लिए साधु बन गया।[7] अहिंसा का अर्थ केवल हिंसा से बचना ही नहीं है अपितु अहिंसा के अतिचारों से भी दूर रहना है। प्राकृत कथाओं में यह स्पष्ट हुआ है कि वध, बन्धन, छेदन, अतिभारारोपण एवं खान-पान-निरोध आदि क्रियाएं भी हिंसा के ही रूप हैं, इनसे बचकर ही अहिंसा का पालन हो सकता है। कहारयणकोश में इनकी सुन्दर कथाएं दी हैं।[8] प्राणी-वध तो दुःख देने वाला है ही, किन्तु यदि किसी को कष्ट पहुंचाने एवं किसी के वध करने की बात मन में भी लायी जाय अथवा किन्हीं प्रतीकों के द्वारा वध की क्रिया पूरी कर ली जाय, तो भी अनेक जन्मों तक उसके दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं।[9] कालक कसाई को ५०० भैंसों का वध करने के कारण तो कुएं में बन्दी बनाकर दुःख दिये गये, किन्तु वहां पर उसने अपने शरीर के मैल के

---

१. तए णं रायगिहे नयरे अण्णदा कदाइ अमाघाए घुट्ठयावि होत्था—अ० ८, उपासगदसाओ, अमाघायपदं।
२. जैन कहानियां, भाग ७, कथा ९
३. मज्झमिकानगरी का शिलालेख
३(अ)सयलम्मि वि जियलोए तेण इहंघोसिओ अमाघाओ।
इक्कं पि जो दुहत्तं सत्तं बोहेदू जिणवयणे ।। २६८।।
४. विपाकसूत्र, ८
५. (i) समराइच्चकहा का सांस्कृतिक अध्ययन : डा० भिनकू यादव।
(ii) हरिभद्र के प्राकृत कथा-साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन : डा० नेमिचन्द्र शास्त्री।
(iii) कुवलयमाला कहा का सांस्कृतिक अध्ययन : डा० प्रेमसुमन जैन।
६. अन्तकृद्दशांग, अध्ययन ३, वर्ग ६
७. जैन कहानियां, भाग २, कथा ३
८. कहारयणकोस, भाग २, कथानक ३४, जैनकथामाला, भाग ३८, मधुकर मुनि।
९. (i) यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन : डा० गोकुलचन्द्र जैन।
(ii) यशस्तिलक एंड इंडियन कल्चर : डा० हिन्दकी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५०० भैंसे बनाकर जो उनकी हत्या करने का संकल्प किया उसके कारण उसे नरकों की यातना सहनी पड़ी।[1] फिर सचमुच का प्राणिवध तो दुःखदायक है ही।

रक्षात्मक हिंसा का दायरा

प्राकृत कथाओं में अहिंसा के उस दूसरे पक्ष को भी छुआ गया है, जहां कई कारणों से आत्मरक्षा के रूप में विरोधी हिंसा करना आवश्यक हो जाता है। भाष्य कथा साहित्य से ज्ञात होता है कि संघ की रक्षा के लिए संघ में धनुर्धर साधु भी होते थे।[2] कोंकणक साधु ने जंगल में संघ की रक्षा करते हुए एक रात में तीन शेर मार डाल थे।[3] आचार्य कालक की कथा प्रसिद्ध ही है कि उन्होंने साध्वी के सतीत्व की रक्षा के लिए राजा के महल पर दूसरे राजा से चढ़ाई करवा दी थी।[4] पार्श्वनाथ ने भी यवनराज से प्रभावती की रक्षा के लिए युद्ध स्वीकार किया था। गृहस्थ श्रावक तो ऐसी आरम्भी एवं विरोधी हिंसा जीवन में करते ही रहते हैं। इस प्रकार के प्रसंग यह स्पष्ट करते हैं कि अहिंसा का सिद्धान्त भावना और क्रिया की बड़ी सूक्ष्म कगार पर टिका हुआ है। इसे समझने के लिए ही जैन दर्शन के अन्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाना सार्थक होता है।

प्राकृत कथाओं के उपर्युक्त कुछ प्रसंगों से स्पष्ट होता है कि अहिंसा किसी जाति या वर्ग विशेष की बपौती नहीं है। जीवन के किसी भी स्तर और कोटि का प्राणी अहिंसा में विश्वास रख सकता है। यथाशक्ति उसे अपने जीवन में उतार सकता है। पशु जगत् भी अहिंसा, अनुकंपा, परपीड़ा आदि का अनुभव रखता है। अतः उसका जीवन रक्षणीय है। ये कथाएं यह भी उजागर करती हैं कि हिंसा की परिणति दुःखदायी ही होती है, चाहे वह किसी भी स्तर या उद्देश्य से की जाये। किन्तु हिंसक कार्यों में लिप्त व्यक्ति इतना दयनीय भी नहीं है कि उसे सुधारने का अवसर न हो। वह किसी भी क्षण अपनी हिंसा की ऊर्जा को अहिंसा की ओर मोड़ सकता है। निर्भयता और प्रेम से उसे कोई प्रेरित करने वाला मिलना चाहिए। कथाओं का केन्द्र-बिन्दु यह जान पड़ता है कि आत्मा के स्वरूप के प्रति उदासीनता एवं अज्ञान ही हिंसक भावनाओं को जन्म देता है तथा वही परपीड़ा का कारण है। अतः कायिक अहिंसा के परिपालन के लिए अपरिग्रही, संयमी एवं अप्रमादी होना आवश्यक है। अनेकान्त एवं स्याद्वाद को जीवन में उतारने में मानसी अहिंसा का पालन किया जा सकता है तथा आत्मिक अहिंसा की उपलब्धि तो वीतरागता की ओर बढ़ने से ही होगी।

> श्री कृष्ण ने कहा, सबसे उत्तम यज्ञ वह है जिसमें किसी भी जीव की हत्या नहीं होती, प्रत्युत, जिस यज्ञ के द्वारा मनुष्य अपना जीवन परोपकार में लगा देता है। यह पुरुष-यजन-विद्या (दूसरों के निमित्त जीने की विद्या) श्री कृष्ण ने अपने गुरु घोर आंगिरस से सीखी थी और उसकी दीक्षा उन्होंने अर्जुन को भी दी थी। उस यज्ञ की दक्षिणा धन नहीं, वरन्, तपश्चर्या, दान, ऋजुभाव, अहिंसा और सत्य था। यह ध्यान देने की बात है कि जैन-ग्रन्थों में, प्रायः श्री कृष्ण जैन माने गए हैं और उनके गुरु का नाम नेमिनाथ बताया गया है। श्री कृष्ण के समय से आगे बढ़े, तब भी, बुद्धदेव से कोई ढ़ाई सौ वर्ष पूर्व हम जैन तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ को अहिंसा का विमल सन्देश सुनाते पाते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि पार्श्वनाथ के पूर्व अहिंसा केवल तपस्वियों के आचरण में सम्मिलित थी, किन्तु पार्श्व मुनि ने उसे सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह के साथ बांधकर सर्वसाधारण की व्यवहार-कोटि में डाल दिया।
>
> जैन धर्म का हिन्दू-धर्म पर क्या प्रभाव पड़ा, इसका उत्तर अगर हम एक शब्द में देना चाहें तो वह शब्द 'अहिंसा' है, और यह अहिंसा शारीरिक ही नहीं बौद्धिक भी रही है। शैव और वैष्णव धर्मों का उत्थान जैन और बौद्ध धर्मों के बाद हुआ, शायद यही कारण है कि इन दोनों मतों (विशेषतः वैष्णवमत) में अहिंसा का ऊंचा स्थान है। दुर्गा के सामने कूष्माण्ड की बलि चढ़ाने की प्रथा भी जैन और बौद्ध मतों के अहिंसावाद से ही निकली होगी।
>
> (श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत संस्कृति के चार अध्याय के पृ० सं० १०५,१०६ एन ११६ से संकलित)

१. जैन कहानियां, भाग २, कथा ६.
२. बृहत्कल्पभाष्य, १-३०१४.
३. निशीथ, पृ० १००, भाष्यकहानियां : मुनि कन्हैयालाल।
४. निशीथचूर्णि १०,२८६० की चूर्णि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org